

बुराइयों के अंधकार में अच्छाइयों की किरणें

— पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

बुराइयों के अंधकार में अच्छाइयों की किरणें

लेखक

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा—२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो० : ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७

फैक्स : २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४

मूल्य : ६.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि

मथुरा (उ० प्र०)

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

बुराइयों के अंधकार में अच्छाइयों की किरणें

वृद्ध अध्यापक की वसीअत

एक वृद्ध रोगी मृत्यु-शय्या पर था।

सभी परिजन दुःख से त्रस्त, मुँह पर हवाईयाँ उड़ी हुई। डॉक्टर परेशान था। उसने हर प्रकार की दवाईयाँ और इंजेक्शन दिए थे, किंतु कोई लाभ न हुआ था। रह-रहकर रोगी आँखें खोलता, विस्फारित नेत्रों से मित्रों और निकट संबंधियों को अपने चारों ओर खड़ा देखता, पहचानने की कोशिश करता, पर कमजोरी के कारण नेत्र स्वयं मुँद जाते, जैसे सायंकाल के मुरझाए पुष्प!

“जो कुछ कर सकते हों, इन्हें बचाने के लिए कीजिए! हम आपको अधिक से अधिक फीस देंगे!” उसके संबंधियों ने अनुरोध की।

चिंतित डॉक्टर ने रोगी का परीक्षण करते हुए कहा—

“मैं सब दवाईयाँ और उपचार करके देख चुका हूँ और भी कर रहा हूँ...लेकिन रोगी बहुत बूढ़ा है...जर्जर हो चुका है, कई दिनों से ताकत की दवाईयों पर जीता रहा है...मनुष्य की आयु की भी एक सीमा है...।”

“फिर भी...फिर भी...” रोते हुए संबंधी बोले—“आप इनके लिए तो कुछ और प्रयत्न कीजिए। प्राण बचाइए...जब तक साँस तब तक आस...”

डॉक्टर फिर नया इंजेक्शन देने लगा।

सहसा रोगी ने अपने निर्बल हाथों से डॉक्टर का हाथ पकड़ लिया। धीमी सी कमजोर ध्वनि में उसने कुछ कहना चाहा।

“आप क्या चाहते हैं ? आपकी आखिरी इच्छा क्या है ?”

“मैं ... मेरी वसीअत...तिजोरी में...मेरी वसीअत निकालकर पढ़ो...उसे न भूलना...जलाने से पहले...”

“क्या है आपकी वसीअत में ? क्या लिखा है उसमें ?”
उत्सुकता उठी।

पर हाय ! मृत्यु के कराल हाथों ने रोगी को दबोच लिया। रोगी के होठ हिलने बंद हो गए। शरीर ठंडा, अवयव ढीले...वह चिर निद्रा में सो गया...हमेशा के लिए...उस नींद से उस वृद्ध को कभी न उठना था...संबंधी सभी रो रहे थे। घर में कुहराम मच गया। शव की अंत्येष्टि की तैयारी में संलग्न हो गए।

डॉक्टर अपने औजार सँभालकर बैग में रख रहा था। उसके भी नेत्र आँसुओं से गीले थे। अपनी-सी उसने सब कुछ की थी, पर रोगी को मृत्यु के क्रूर पंजों से बचा न पाया था।

मौत के सामने मनुष्य कितना लाचार है। यहीं उसने हार खाई है। जन्म और मरण ईश्वर के हाथों में रहा है।

किसी ने कहा, “वह वसीअत तो देख लो कोई। पता नहीं, उसमें क्या लिखा है इन्होंने। उनकी आखिरी इच्छा क्या थी ?”

“पहले शव की अंत्येष्टि-क्रिया की तैयारी करो, फिर वसीअत देखी जाएगी।”

“नहीं, नहीं ! मरने से पहले वे कुछ और कहना चाहते, पर कमजोरी की वजह से फरकते होठ बंद हो गए।”

“अच्छा लाओ। वसीअत को निकलवाओ। देखें, क्या लिखा है उसमें ?”

एक ओर शव को मसान पर फूँकने ले जाने की तैयारी हो रही थी। लोग गमगीन चेहरों से अरथी बना रहे थे।

दूसरी ओर तिजोरी में से वसीअत निकाली जा रही थी। वह निकालकर लाई गई। कागज पीला सा पड़ चुका था।

“लाइए, मैं पढ़ूँ।” एक महाशय बोले।

उन्होंने वह कागज हाथ में लिया। वह दुर्बल हाथों से लिखा हुआ था। अक्षर भी साफ न बन पाए थे। फिर भी उन टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में मरने वाले ने अपनी अंतिम इच्छा अभिव्यक्त कर दी थी।

वे पढ़ते रहे। सबके मुखमंडल आश्चर्य से चकित थे।

“क्या लिखा है? कुछ कहिए न? अरे, आप तो सहसा चुप हो गए।” एक आवाज आई।

“हाँ, हाँ। जल्दी कीजिए। शव को ले जाने में देरी करना ठीक नहीं है। जितना यहाँ रुकेंगे, उतनी देर तक ही कुहराम चालू रहेगा...बोलिए न, क्या इच्छा थी प्रोफेसर साहब की। वसीअत में क्या लिखा है?”

“अजीब इच्छा है! क्या करें इन बूढ़ों की मरजी को?”

“फिर भी बतलाओ तो!” सभी की उत्सुक दृष्टि वसीअत पढ़ने वालों की ओर थी।

“शव को मसान पर नहीं ले जाना है। उसने कुछ और ही लिखा है अपनी वसीअत में।”

“शव को नहीं फूँकना है? क्या कहते हैं आप? अरे साहब, आपका मतलब समझ में नहीं आया। स्पष्ट कहो, क्या लिखा है हमारे बूढ़े प्रोफेसर साहब ने? वे क्या चाहते थे? अपनी जमीन-जायदाद किसी को देने की बात लिखी होगी।”

एक महाशय ने वसीअत पढ़नी शुरू की, उसमें लिखा था—
“मैंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में तीस वर्ष अध्यापन कार्य किया है। आजन्म विद्यार्थियों को पढ़ाया है। यह कार्य मैंने पैसे के लिए नहीं,

बल्कि विशुद्ध सेवा-भाव से किया है। रिटायर हो जाने पर भी मेरे दुर्बल शरीर से जो काम बन पड़ा, वह मैं करता रहा हूँ। वृद्धावस्था में भी मैंने अपनी संस्था को नहीं छोड़ा। अब मरने पर भी इसकी चहारदीवारी से पृथक नहीं होना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मरने पर शरीर जलाया न जाए। जलकर खाक हो जाने से बेहतर यह है कि यह नर-कंकाल मेरी संस्था के लिए काम आए। यह शरीर संस्था के पैसे से पला-पनपा है। उसके पोषण में संस्था का पैसा व्यय हुआ है। इसलिए आखिरी क्षण तक उसी के हित में लगना मैं नैतिक दृष्टि से उचित समझता हूँ। मेरा कंकाल समाज की धरोहर है। इसलिए यह कंकाल मेडिकल कॉलेज के छात्रों के लिए रख लिया जाए। इसकी हड्डियाँ उन्हें मानव-शरीर की हड्डियाँ तथा उनके जोड़ों का ज्ञान कराने के काम आएँ। इस प्रकार मेरी हड्डियों से विश्वविद्यालय के असंख्य मेडीकल छात्रों की सेवा होगी। वे शरीर-विज्ञान की शिक्षा लेंगे। यही रूप समाज के लिए लाभदायक हो सकता है।”

“अजीब, इच्छा है। ऐसी वसीअत पहले नहीं देखी।”

“लेकिन क्या किया जाए। अपने मन की बात है।”

“अब मरे हुए व्यक्ति की आत्मा को परेशान करने से क्या लाभ? ये जो कुछ चाहते थे, वही हो। तभी मरे हुए व्यक्ति के प्रति न्याय है।”

सभी एक मत थे। वसीअत में लिखी इच्छा पूर्ण होनी चाहिए।

शरीर रख लिया गया। शव को ले जाने की सब तैयारी धरी की धरी रह गई। सब परोपकारमय अध्यापक की दैवी प्रवृत्तियों पर सोच-विचार रहे थे।

आज तक वह नर-कंकाल विद्यार्थियों को मानव-शरीर के अस्थि ज्ञान के लिए काम आ रहा है।

वह दिन मानव-समाज के लिए कितना शुभ होगा, जब समाज का प्रत्येक सदस्य अपना सर्वस्व समाज की धरोहर समझेगा। अपना तन, मन, धन उसकी सेवा में समर्पित कर देगा।

मनुष्य को सोचना चाहिए कि उसे जो कुछ शक्ति संपन्नता प्राप्त हुई है, वह समाज से ही मिली है। उसमें उसका अपना इतना ही अधिकार है कि उससे समुचित सुख-सुविधा के लिए अपना भाग ले ले। शेष को समाज के अन्य सदस्यों, आने वाली नई पीढ़ी के उपकार के लिए दे जाए।

सबसे बड़ी बुद्धिमानी और महानता यही है कि सुखी मनुष्य दूसरों को सुखी, उन्नतिशील, परोपकारी और पौरुषमय बनाने का प्रयत्न करें।

अपने पिछड़े हुए, दीन-हीन और साधनविहीन भाइयों को दुःख-संकट में देखकर भी जो स्वयं अकेले आनंद भोग की भावना रखता है वह स्वार्थी है, क्रूर है और बहुत से अर्थों में अत्याचारी भी है।

अजीब आत्म-समर्पण

थानेदार साहब को सुबह ही सुबह किसी ने आवाजें दीं—
“साहब! मुझे, आपसे कुछ कहना है। थानेदार साहब! थानेदार साहब!”

दुमंजिला मकान था। थानेदार साहब अभी सो रहे थे। बार-बार आवाजें आने से उनकी पत्नी ने उन्हें जगाया—“देखिए तो, एक आदमी तड़के से ही बाहर बैठा है। आपसे मिलना चाहता है। मैंने इसे बाहर बैठे बहुत देर से देखा है।”

“कांस्टेबिल से पुछवाया क्या चाहता है, यह?”

“जी, दो बार वह पूछ गया है। तब तक आप सोए रहे। अब एक घंटा हो गया इसे बाहर बैठे-बैठे। अधीर हो, वह आवाजें देने

लगा है। तनिक देखो न, कोई मुसीबतजदा मालूम होता है। चेहरा मायूस, आवाज में चिंता और हवाइयाँ उड़ती हुई।”

थानेदार साहब कुछ नरम पड़े।

झाँककर बोले—“अच्छा, नीचे आ रहा हूँ। बैठो अभी!”

वह आदमी कुछ संतुष्ट सा फिर बाहर चबूतरे पर बैठ गया। बड़े तड़के ही वह थाने में पहुँच गया था। पहरे पर खड़े कांस्टेबिल ने उसे अंदर न घुसने दिया था। “मुझे थानेदार साहब से ही एक काम है। कोई रिपोर्ट नहीं लिखानी है।” मुंशी जी ने कई बार उससे पूछा, पर वह गुमसुम था। उसने कुछ भी न कहा।

“मुझे तो सीधे थानेदार साहब से ही काम है।”

यही कहता था। “अच्छा, बैठो बाहर। एक घंटे भर बाद ही मिल सकेंगे।” यही जवाब उसे मिलता रहा था। वह प्रतीक्षा में बैठा रहा।

सचमुच एक घंटे का भी डेढ़ घंटा हो गया, पर थानेदार साहब की नींद न खुली थी। पुलिस के अफसरों की नींद आसानी से नहीं खुलती।

पुकारने पर उत्तर पा आगंतुक को कुछ संतोष हुआ। वह बैठकर फिर प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर बाद बैठक का दरवाजा खुला। कांस्टेबिल आगंतुक को अंदर ले गया। थानेदार तने हुए बैठे थे जैसे बकरे को जबह करने को कसाई!

“क्या बात है? तुमने मुंशी जी को ही रिपोर्ट क्यों नहीं लिखा दी थी। फजूल मुझे परेशान किया।” कड़ककर बोले, मानो बंदूक से गोली छूटी।

“माफ करें, सरकार गलती हो गई! कुछ ऐसी गुप्त बातें हैं जो सिर्फ हुजूर से ही अर्ज करनी थीं।” विनय के स्वर में वह बोला।

“मुझसे कौन सी पोशीदा बातें कहनी है ? यहाँ तो डकैत, चोर, बदमाश, आवारा ही आते हैं, जो हर बात छिपाते ही रहते हैं। तुम कौन हो, जो खुद अपनी गुप्त बातें आज निर्भय मुझसे कहने आए हो ?”

वह व्यक्ति कुछ आश्वस्त हुआ। कुछ उत्साहित हो ठंडे लहजे में बोला—“वही तो अर्ज करना है। उसे कहकर ही तो मन का भार हलका करना चाहता हूँ। आप ही को खासतौर पर सुनाना चाहता हूँ। कुछ ऐसी बातें हैं, जो आपसे ही कहनी हैं। सबसे बड़े अफसर से निवेदन करनी हैं।”

“मुझसे ही कहनी हैं ?” कुछ रुचि लेते हुए थानेदार साहब बोले—“अच्छा कहो, क्या कहना है तुम्हें। क्या स्पष्ट करने को तुम थाने के दरवाजे पर दो घंटे से बैठे हुए हो ? यहाँ से तो लोग दूर-दूर भागते हैं। एक तुम हो, जो दो घंटे से धरना दिए बैठे हो। किसी की शिकायत है ?”

“एक टाइम था जब मैं भी थाने से ऐसे ही दूर भागता था, जैसे फरार अपराधी या डकैत भागा करते हैं।”

“तो क्या तुमने भी कभी अपराध किया था ?”

“जी हाँ, हुकम, अपराध किया था।”

“तो जेलखाने की मार भी पड़ी होगी। हंटरो के निशान कमर पर उभर आए होंगे। एक बार जेलखाने जाकर कौन भूल सकता है !”

“जी नहीं, जेलखाने तो नहीं गया।”

“कसूर किया और जेलखाने नहीं गए। कानून की निगाह से बचे रहे। खूब, तुम बड़े चालाक निकले। आँखों में धूल झोंक दी तुमने, शैतान कहीं के।”

“पुलिस को तो चकमा दिया, पर खुद को धोखा न दे सका। उसी का तो पछतावा है। उसी की माफ़ी माँगने आया हूँ सरकार !” उसके नेत्रों में आँसू थे।

“अभियुक्त को पछतावा! यह खूब कही। हमने तो अभियुक्तों को अपनी करनी पर पछताते नहीं सुना। आज पहली बार यह तुम्हारी जुबानी सुन रहे हैं। स्पष्ट बताओ क्या बात है? तुम आखिर क्या कहना चाहते हो?”

“जी मैं अपने बुरे कार्य पर बड़ा लज्जित हूँ और प्रायश्चित स्वरूप आज अपना अपराध आपके सामने कबूल करने आया हूँ। जब से मैंने डाकेजनी में भाग लिया था, तब से ही मेरी आत्मा पापकर्म करने के लिए अंदर ही अंदर से कचोटती रही है। मैं अपराध को दबा नहीं पा रहा हूँ। अंदर से कोई आवाज कहती है—‘पाप को कह दे, सबके सामने कबूल कर ले, उसकी सजा भुगत ले, तो मन का भार हलका हो जाएगा।’ इसी गुप्त मानसिक व्यथा को हटाने के लिए हुजूर के पास भागा आया हूँ। मुझे माफी दी जाए।”

“तुम कौन हो? पूरी तफसील दो, क्या-क्या हुआ? कैसे हुआ? क्या केस है?”

“मैं जुम्मन नामक फरार अभियुक्त हूँ।” वह रोकर कहने लगा—“मेरा संबंध नौ माह पूर्व कानपुर जिले के ग्राम बारा (ककवन थाना क्षेत्र) निवासी मोहनलाल नामक ग्रामीण के घर से घटित सशस्त्र डाकेजनी से है। मेरे नेतृत्व में ही वह डकैती हुई थी। मैंने कई जगह और भी छोटी-मोटी चोरी करवाई हैं। पर अब मुझे ऐसा लग रहा है कि यह सब पाप कर्म था। मेरी अपराध-वृत्ति का कुफल था। एक अच्छे नागरिक को चोरी-डकैती जैसा पाप कर्म कभी नहीं करना चाहिए। मैं समझता हूँ कि साहसी मनुष्य वही है जो अपने अज्ञान में की गई भूल के लिए प्रायश्चित करने में संकोच न करे। मुझे सजा दिलवाइए।”

थानेदार साहब डकैत का आत्म-समर्पण देखकर चकित रह गए।

“अब आगे तुम्हारा क्या करने का विचार है?” थानेदार साहब ने जिज्ञासावश पूछा।

“मैं शेष जीवन में अच्छाई अपनाना चाहता हूँ। अब जो कुछ बन सके भलाई करना चाहता हूँ। अब तक डकैत बने रहने में गर्व करता रहा, आगे से सज्जन कहलाने की इच्छा रखता हूँ। मैंने टक्करें खाकर यही सीखा है, शराफत का जीवन ही स्थायी और शांतिमय जीवन है। परोपकार ही मनुष्य का सहज कर्तव्य है। उसी से उसकी आत्मा को शांति मिलती है। आवारागरदी अप्राकृतिक है।”

“तब तो मैं तुम्हें अदालत से माफी दिलाऊँगा। एक गिरे हुए को सज्जन बनाना भी तो धर्म ही है।” थानेदार साहब ने कोशिश भी की और अंत में अपने शुभ मनोरथ में सफल भी होकर रहे।

एक दिन अखबारों में छपा—

“कानपुर। जिला फर्रुखाबाद के जुम्न नामक फरार अभियुक्त ने आज यहाँ श्री एम० सी० सिंह जे० ओ० भोगनीपुर की अदालत में आत्म-समर्पण कर दिया। अभियुक्त का संबंध नौ माह पूर्व कानपुर जिले के ग्राम बारा निवासी श्री मोहनलाल नामक ग्रामीण के घर में घटित सशस्त्र डाकाजनी से था।” प्रायश्चित्त का ऐसा उदाहरण कम मिलता है।

सद्गुण हर मनुष्य में छिपे रहते हैं। तनिक सा शुभ प्रोत्साहन पाकर वे सही दिशाओं में विकसित हो सकते हैं। जरूरत यह है कि हम कर्मठ होने के साथ-साथ अपने इर्द-गिर्द के व्यक्तियों, गिरे हुएओं को भी कर्तव्यपरायण बनाएँ। शुभ कर्मों के प्रति उत्साह भरें। जो अपनी पवित्र और ऊँची विशेषताओं के अनुरूप विशेषताएँ अपने साथियों में विकसित नहीं करता, वह एक दिन या तो उनके संसर्ग से निकम्मा हो जाएगा, या फिर वह बिना साथी के अकेला रह जाएगा।

हत्यारे का हृदय-परिवर्तन

अहमदाबाद जेल में आज किसी हत्यारे को फाँसी देने की तैयारियाँ की जा रही हैं। सुबह से ही जेल के कर्मचारी और कैदी इधर-उधर भागा-दौड़ी कर रहे हैं। जेल के अहाते में बड़ी चहल-पहल थी।

फाँसी का स्थान साफ किया जा रहा है। बहुत कम दिन ऐसे होते हैं, जब जेल में ऐसी चहल-पहल होती है। फाँसी की सजा उन हत्यारों को मिलती है जो हर दृष्टि से गिरे हुए लाइलाज अपराधी होते हैं। अदालत यह समझकर मौत की सजा देती है कि अमुक हत्यारे समाज के लिए खतरनाक हैं। पता नहीं उत्तेजना में और कितनों को मौत के घाट उतार दें।

कोई भी अनुचित कार्य करने से पहले मनुष्य का अंतःकरण उसे पाप कर्म से सावधान कर देता है। फिर भी यदि मनुष्य बुराई में प्रवृत्त होता है, तो यह उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। अंतःकरण की आवाज को दबाना ईश्वर के संकेत को दबाना है।

हत्यारे का नाम कानपर्वत पटेल था। वह जूनागढ़ के एक गाँव का निवासी था। जुआ और चोरी के अभियोग में उसे दो कांस्टेबलों ने गिरफ्तार करने का प्रयत्न किया था। वह खूँखार प्रवृत्ति का था और हिंसा करने में उसका मन खुला हुआ था। मार-पीट, गाली, डाकेजनी और हर तरह की गुंडागर्दी करना उसकी आदत थी। शरीर से तगड़ा था। निर्द्वंद्व खाना-पीना, शरारत करना ही उसका स्वभाव था। इसलिए जैसे ही पुलिस वालों ने उसे गिरफ्तार करने का उपक्रम किया, उसने अपनी जेब से छिपा हुआ तेज चाकू निकालकर उनके पेट में घुसेड़ दिया। रक्त का फुहारा बह निकला। एक गिरा तो दूसरा कांस्टेबल भागा। पर भागकर उसने उसकी पीठ में भी तेज छुरा भोंक दिया। अब उसके हाथ खून से सने थे। लाल-लाल छुरा उसके हाथ में था।

दो लाशें पड़ी रक्त में नहा रही थीं। उसे क्या पता था कि आवेश का क्या कुफल होता है। पर हत्यारा भाग न सका। शोर करती हुई उत्तेजित भीड़ इकट्ठी हो गई—“पकड़ो! पकड़ो ! इसने दो खून कर दिए!! हत्यारा भाग न जाए!!”

लोग लाठी ले-लेकर चारों ओर से घिर आए। हत्यारा हक्का-बक्का रह गया। वह कहीं भाग ही न सका। आखिर पकड़ लिया गया।

पहले तो उत्तेजना में जनता ने उसकी खूब मरम्मत की, पर फिर केस पुलिस के पास आया। वह कई वर्षों तक चलता रहा। दोनों ओर से वकीलों ने बहस की। उसे पागल करार दिया गया। पर मौत की सजा से कोई उसे बचा न सका। उसे फाँसी की सजा देने का हुक्म अदालत से हुआ।

अंतिम दिनों में सदाचार-समिति के कुछ कार्यकर्ता हत्यारे से मिले थे। उपदेश तथा प्रार्थनाओं द्वारा उसका हृदय-परिवर्तन करने का उन्होंने प्रयास किया था। वे सफल भी हुए।

उन्होंने कई दिन तक उस हत्यारे से कहा था—“आग के समीप रहने से शीत का कष्ट चला जाता है। इसी प्रकार मनुष्य पाप की ओर तब बढ़ता है, जब वह परमात्मा से दूर रहता है। आपके शरीर में ईश्वर का निवास है। आप में समस्त सद्भावनाएँ और सत्प्रवृत्तियाँ हैं। ईश्वर-पूजा के लिए किसी प्रतिमा की पूजा या विशिष्ट साधन पद्धति की आवश्यकता नहीं है। उसकी पूजा तो ईश्वर की बनाई उस जीव-सृष्टि की पूजा करना है। ईश्वर वस्तुओं में नहीं, हमारी शुभ-सात्विक भावनाओं में निवास करता है।”

“जिसके भीतर जितनी समाज-सेवा का भाव और सदाचरण रहेगा, उसमें उतना ही ईश्वरीय प्रकाश उदय माना जा सकता है। परमात्मा का दिव्य प्रकाश जिस भी अंतःकरण में रहेगा, उदीयमान रहेगा, उसमें

तृष्णाओं और अपराध भावनाओं का अंधकार कैसे टिकेगा ? वहाँ द्वेष, चिंता, भय, निराशा और उद्वेग के लिए स्थान कहाँ रहेगा ?”

इस प्रकार के दिव्य उपदेशों को सुनते-सुनते उस हत्यारे के विचारों में खलबली मच गई। ईश्वर का चमत्कार, उसमें आस्तिकता की भावनाएँ उदित हुईं। उसने अनुभव किया कि विकृति और पापवृत्तियों में फँसकर उसका समस्त जीवन ही नष्ट हो चुका था। उसने अपने आप को अभागा माना। दो हत्याएँ कर देने के पाप से वह विक्षोभपूर्वक प्रायश्चित्त करने को बेचैन हो उठा। मनुष्य के भीतर जहाँ असुरता सोई रहती है, वहाँ देवत्व भी कम नहीं है। उसके देवत्व ने जोर मारा। उसका दृष्टिकोण ही बदल गया। वह सोचता रहा—“अब क्या करूँ जो कुछ परोपकार का कार्य हो जाए।”

फल यह हुआ कि अंतिम क्षणों में हत्यारा बदलकर एक भिन्न तरह का आदमी बन गया। उसमें देवत्व का स्थायी निवास हो गया। पुण्य मनुष्य की जन्म-जात विभूति है। एक बार पुण्य का मधुर स्वाद चखने पर आदमी स्वयं पाप से बचता है। उसे पापवृत्तियों में फँसते हुए अस्वाभाविकता और पश्चात्ताप का अनुभव होता है। पुण्य तथा देवत्व का रास्ता ग्रहण करने पर कोई भी व्यक्ति किसी को नीचा नहीं दिखा सकता, क्योंकि सत्य, प्रेम, स्नेह, पुरुषार्थ तथा सौहार्द्र में मनस्विता और तेजस्विता होती है।

पुण्य का परिणाम आंतरिक प्रकाश है, जिसे प्राप्त कर मनुष्य का जीवन आनंदमय हो जाता है। परमात्मा स्वयं ही उसका मार्गदर्शक है।

गीता में भगवान ने स्वयं घोषणा की है—

“जो प्राणीमात्र का मित्र है, दयाशील है, जो मोह-ममता और अहंकार से रहित सत्कर्म करता है, जो क्षमावान है, सर्वदा संतुष्ट, स्थिरचित्त, संयमी तथा दृढ़ निश्चयी है, जिसने अपने मन तथा बुद्धि

को प्रीतिपूर्वक मुझे समर्पित कर दिया है, ऐसा भक्त मुझे प्रिय है। वह सुख-दुःख में समान रहता है, क्रोध भी उसे नहीं आता। इस प्रकार पुण्य कार्यों में विश्वास रखकर, संपूर्ण प्राणियों के हित को ध्यान में रखकर आचरण करता है। निंदा से दुखी नहीं होता, मान-प्रतिष्ठा से हर्षित नहीं होता, जो सुख-दुःख दोनों को समान रूप से प्यार करता है, वह पुण्यात्मा मुझे प्रिय है।”

हत्यारे ने उस फाँसी को अपने लिए वरदान समझ लिया। उसने यह माना कि ईश्वर उसके पापपूर्ण इस जीवन का अंत कर अगले जन्म में श्रेष्ठतर जीवन देने की युक्ति कर रहा है। मौत की सजा पाकर उसे अपराध वाली दूषित जिंदगी से मुक्ति मिल जाएगी। दूसरे जन्म में वह भला इनसान बनेगा।

मृत्यु से पूर्व आदमी के जैसे विचार और मन की भावनाएँ होती हैं, वैसा ही उसे पाप या पुण्य-फल मिलता है। मरते-मरते भगवान का नाम होठों पर रखने से कितने ही पापियों को मुक्ति मिली है।

फाँसी के दिन वह बड़े तड़के उठा। भगवान से प्रार्थना की—
“हे ईश्वर! अब मैं तेरी शरण आ रहा हूँ। पाप के जीवन से ऊब उठा हूँ। मैं पाप में नहीं रह सकता, पुण्यमय नया जीवन चाहता हूँ। मेरे पापों को क्षमा कीजिए। अगले जीवन में मुझे शुद्ध आचरण का अवसर मिलेगा।”

जब कांस्टेबिल उसे फाँसी पर चढ़ाने के लिए लेने आए तो परमात्मा की प्रार्थना में उसके हाथ जुड़े हुए थे।

फाँसी के तख्ते पर खड़े होने पर अधिकारियों ने उससे पूछा—
“मरने से पहले क्या तुम्हारी कोई इच्छा है?”

“मुझे अपने संचित दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त करना है।”

“फिर क्या मरजी है। कैसे प्रायश्चित्त करना चाहते हो?”

“एक बख्शीशनामा बनाकर।”

“किसके नाम अपनी संपत्ति को बख्शीश करना चाहते हो?”

“मैं अपनी संपत्ति का आधा भाग उन दोनों सिपाहियों की धर्मपत्नियों और बच्चों को दे देना चाहता हूँ, जिनकी हत्या आवेश के कारण मेरे हाथों हुई है।”

उसकी यह इच्छा सुनकर इधर-उधर खड़े जेल के सिपाही और अधिकारी चकित-विस्मित थे। परोपकार का भाव कहाँ से आ गया इस हत्यारे में!

मानवीय सदाचरण के बीज पापी, अपराधी, हत्यारे सबमें सोए पड़े हैं। सद्भावनाओं के ये बीजांकुर आज नहीं तो कल जरूर पनपेंगे।

आप समाज को जो कुछ बन सके सेवा, सहयोग, सहानुभूति के रूप में कुछ भी दीजिए। धनवान धन दे सकता है और शक्तिमान साहस!

किंतु जो न धनवान है और न शक्तिवान है, वह किसी को कुछ देने की इच्छा रखता है, तो क्या दे? यह प्रश्न बहुत से उदार हृदयों की उदारता को निष्फल बना देता है।

जिसके पास प्रत्यक्ष रूप से कुछ देने के लिए नहीं है, उसके पास एक ऐसा अनुपम तथा अक्षय कोष होता है, जो धनवानों और शक्तिवानों के पास नहीं होता। वह अक्षय कोष है—सेवा और सहानुभूति! प्रेम और स्नेह! दया और करुणा!

धन और शक्ति का कोष समाप्त हो सकता है, उनमें कमी आ सकती है, पर अपनी सेवा और सहानुभूति को दिन-रात कितना ही क्यों न बाँटा जाए, वह बूँद भर नहीं घटती।

किसी भी वस्तु का अपव्यय हो सकता है, किंतु समाज के गिरे हुए व्यक्तियों, अशिक्षित और मूर्खों को विद्या दान, रूढ़िग्रस्त अंध-विश्वासियों को विवेक देना आदि सेवा और सहानुभूति के रूपों का कभी अपव्यय नहीं होता।

सेवा और सहानुभूति के अवसर पाकर भी जो मनुष्य उन्हें नहीं बाँटता, उसे किसी अमानवीय तत्त्व के वशीभूत समझना चाहिए।

आदमी हो तो ऐसा हो

मिर्जापुर में श्री गयाप्रसाद नामक एक सज्जन सुबह पाँच बजे वरानही बाजार से गुजर रहे थे। अभी पूरा प्रकाश न था। थोड़ा-थोड़ा अँधेरा था, पर वे जल्दी में थे और शीघ्रता से भागे से जा रहे थे। संयोग से उनके पाँव में हलकी सी एक ठोकर सी लगी। वे हलके से रुक गए। मन में अनेक विचार उठे।

यह क्या चीज टकराई? कहीं कोई मेंढक तो नहीं?

उन्होंने झुककर कुछ भयभीत से नेत्रों से नीचे देखा। एक मैलीसी पोटली में कुछ बँधा हुआ था। जैसे पाँव लगने से गेंद उछलकर आगे जा पड़ती है, कुछ वैसे ही वह बंडल आगे उछल पड़ा। गंदे से कपड़े में बँधा था।

जरा रुककर उन्होंने सोचा, “इसमें किसी मजदूर की रोटी या और कुछ बँधा सा दीखता है। मेरी ठोकर लगी है, तो ईश्वर की मरजी भी हो सकती है कि मैं इसे उठाकर देखूँ इसमें क्या है? अभी अँधेरा है। ऐसा भी लगता है कि सुबह-सुबह जाने वाले किसी लापरवाह या जल्दबाज मुसाफिर की यह पोटली गिर गई है। हो सकता है कि इसमें कोई काम के कागज हों।”

हर आदमी दुनिया को अपनी निगाह से देखता है। गयाप्रसाद ने सहायता करने की दृष्टि से बंडल को उठाया। छिटपुट अँधेरे में खोला,

तो लगा उसमें मुड़े-तुड़े कागज लिपटे-लिपटाए बँधे थे। शायद किसी विद्यार्थी के पुराने सर्टीफिकेट होंगे, या किसी मुकदमेबाज ग्रामीण के मुकदमे के कागजात। फुरसत में देख लेंगे। वे भी जल्दी में थे। झपटकर आगे निकल गए। उधर ध्यान न दिया।

आगे चलने पर दिन निकल आया। सूर्य की प्रभातकालीन स्वर्णरश्मियाँ दमकने लगीं। फिर जिज्ञासा उठी।

“अब देखूँ, ये कागजात क्या हैं?”

उन कागजों को उलट-पलटकर उन्होंने जो देखा, तो उनके नेत्र आश्चर्य से फटे के फटे रह गए। दिल में धड़कन, पर होठ अवाक्! जैस पत्थर की जड़ मूर्ति! उन्हें कभी भी अनुमान न था कि वे यह देखेंगे?

क्या थे वे कागज? उनमें क्या था?

आश्चर्य में डूबे वे उन्हें उलटते-पलटते रहे। वे एक प्रकार के मानसिक सन्नाटे में खोये हुए थे।

उन्होंने पाया कि उस मैले-कुचैले कपड़े में बँधी पोटली में मुड़े-तुड़े नोट बँधे हुए थे। नोट! उन्होंने अच्छी तरह फिर देखा। बड़ी-बड़ी आँखों से देखा! हाँ, नोट ही थे। कुछ एक-एक के, कुछ दो-दो के, कुछ पाँच-पाँच के और दस-दस के नोट बंडल में बँधे थे। नोट ही नोट!

राह में चकित से एक ओर खड़े हो टटोल-टटोलकर वे उन्हें गिनने लगे। कोई पाँच मिनट में वे गिन लिए, पूरे एक हजार के हैं। ओफ! एक हजार रुपये!! कितने अधिक। किसके हैं ये एक हजार के नोट?

जिस किसी भाग्यशाली को सुबह-सुबह यों अनायास ही एक हजार रुपये मिल जाएँ, उसके आनंद की सीमा नहीं हो सकती। एक हजार रुपये एकत्रित करने में मनुष्य को कितना श्रम और आत्मसंयम

चाहिए। एक हजार से कितना मौज-मजा किया जा सकता है। सैर सपाटा, स्वादिष्ट भोजन, मिठाइयाँ, होटलों में मौज, सिनेमा के शो, फैशनेबिल वस्त्र, गहने, एक नहीं सैकड़ों प्रकार से मजेदारी की जा सकती है। गयाप्रसाद के मन में बिजली की करेंट की तरह एक हजार रुपये से उठाया जाने वाला आनंद घूम गया। वह कल्पना के मनोरम लोक में विहार कर रहे थे।

लेकिन फिर उनकी विचारधारा दूसरी ओर चली—“कोई बेचारा किसी मरीज की चिकित्सा के लिए कहीं से कर्ज लेकर इन रुपयों को लाया होगा, या किसी अभागे पिता की कन्या का विवाह इनके कारण रुका हुआ होगा। हो सकता है, कोई अपने पुराने कर्ज की अदायगी के लिए वे रुपये किसी से माँगकर ही लाया हो। कोई मुसाफिर लंबा सफर कर रहा होगा, पर ये बीच ही में गिर जाने से उस गरीब की यात्रा ही रुक गई होगी। इनके खो जाने से वह कितनी उलझन और परेशानी में पड़ गया होगा! वह सोचता होगा, किसी ने पॉकेट काट ली है या कोई चोर चुरा ले गया है। तो क्या मैं चोर हूँ? क्या मैं पॉकेटमार कहलाना पसंद करूँगा? क्या मैं गुंडा हूँ? आवारा हूँ, जो दूसरों को परेशान कर रहा हूँ? ऐसी दुष्प्रवृत्तियों वाले व्यक्ति तो मानवता के कलंक ही होते हैं। नहीं...नहीं...मैं ऐसा कलंकी आदमी नहीं कहलाऊँगा!”

भला कौन अपने आप को दुष्ट, दुर्जन कहलाना पसंद करेगा? झूठ, कपट, छल, प्रपंच, बेईमानी तो राक्षसों के ही दुर्गुण हो सकते हैं। परोपकार, उदारता और ईमानदारी पर ही मनुष्यता का गौरव अवलंबित है। मैं भी भला आदमी हूँ...सज्जन ही कहलाऊँगा...

यह सोचकर वे उसी स्थान पर एक बंद दुकान के सामने बैठ गए। फिर सोचा, “जिस आदमी का यह बंडल खोया है, वह अवश्य ही इसी

मार्ग से गया है। बाजार में इसी सड़क पर जहाँ उसे पता चला होगा, अपना खोया हुआ बंडल खोज रहा होगा। उसे ढूँढ़ने की इच्छा से वे उसी सड़क पर घूमने लगे। आगे-पीछे कई बार देख आए। कुछ देर बैठ गए। फिर घूमने लगे। उनके नेत्र किसी ढूँढ़ने वाले को उत्सुकतापूर्वक खोज रहे थे। वे जिस किसी यात्री वेशधारी आदमी को नीचे देखते हुए पाते, उसे देखकर पुकारते—“क्यों भाई, क्या गिर गया है? क्या किसी चीज की तलाश है?” उत्तर मिलता—“कुछ नहीं...कुछ भी नहीं देख रहा हूँ।” यात्री जैसा आदमी आगे चला जाता और वे बैठे के बैठे ही रह जाते। वे कोई डेढ़ घंटे तक यों ही तलाश में उत्सुक मुद्रा में बैठे रहे।

उन्हें कोई ऐसा आदमी नजर न आया, जिसके रुपये गिरे हों। संयोग से पास ही उनके एक परिचित श्री जमुनाप्रसाद की दुकान थी। वे दुकान खोलने आ गए। प्रणाम करने के पश्चात गयाप्रसाद ने सारा किस्सा कह सुनाया। बोले—“मैं दूसरे के रुपये अपने पास नहीं रखना चाहता। मुफ्त का रुपया दुःख देता है। मैं इन्हें रखकर बेईमान, चोर कहलाऊँगा। इसलिए आप यह रुपया जमा कर लें। अपने पास इस धरोहर को रखें।”

“जमा कर लूँ?”

“आपकी दुकान इसी बाजार में है। वह आदमी देर-सबेर अपने खोये हुए रुपयों की तलाश में इधर जरूर आएगा, पूरी जानकारी करके आप कृपया उसे उसके रुपये दे दें। एक परोपकार का काम हो जाएगा, पुण्य मिलेगा आपको।”

“बड़ी जिम्मेदारी का काम है।”

“इन्हीं सत्प्रवृत्तियों पर मनुष्य का गौरव अवलंबित है। मानवता की सेवा ही ईश्वर की सच्ची पूजा है। हम केवल अपनी ही उन्नति तक सीमित न रहें। कुछ परोपकार भी तो करें।”

“लेकिन एक हजार एक बड़ी रकम है। इस रकम को हड़प करने के लिए किसी का भी मन बदल सकता है।”

“मन की ईमानदारी ही धर्म है। मनुष्य का मतलब ही दूसरों के काम आना है। मानवता की एक छोटी सी सेवा करना भी बड़े से बड़ा धर्म-कर्म करने के बराबर है, बल्कि यों कहना चाहिए, मानवता की सेवा करना ही सबसे बड़ा धर्म है।”

“अजी, हम दिन में सुबह ही पूजा-पाठ कर लेते हैं। वही धर्म-कर्म मुक्ति के लिए काफी है।” जमुनाप्रसाद ने हँसकर कहा।

“नहीं, सो बात काफी नहीं है”; गयाप्रसाद ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए उत्तर दिया—“यदि हम बहुत कुछ पूजा-पाठ, जप-तप करते हैं, किंतु किसी की आवश्यकता अथवा आपत्तिग्रस्त को देख मुँह फेर लेते हैं, तो हमारा सारा जप, योग व्यर्थ हो जाता है। इसका मतलब है, हम धर्म के व्यावहारिक स्वरूप को नहीं समझते हैं। हमारा सारा पूजा-पाठ ठीक वैसा ही निरर्थक है, जैसा किसी पुस्तकालय के अनपढ़ चपरासी का पुस्तकों के बीच रहना।”

“अच्छा, ठीक है, मैं यह धरोहर रखे लेता हूँ।”

और उन्होंने वह रुपया अपनी संदूकची में सँभालकर रख लिया। श्री गयाप्रसाद चले गए। अपना उत्तरदायित्व दूसरे को सौंपने से वे मन ही मन हलकापन अनुभव कर रहे थे।

अब श्री जमुनाप्रसाद चौकन्ने बैठे रहे। कोई एक घंटे बाद एक परेशान सा यात्री सचमुच ही अपने खोये हुए रुपये खोजता-खोजता उधर से निकला।

“क्या खोज रहे हो सड़क पर?”

“कुछ नहीं, कुछ नहीं! एक मैले से कपड़े में बँधा बंडल कहीं आज सवेरे गिर पड़ा है। उसी की तलाश में हूँ। शायद सड़क की सफाई

करने वाले सफाईकर्मी, ने कूड़े-करकट के ढेर में समेटकर फेंक दिया होगा।”

“इधर आओ!”

“क्यों क्या बात है? क्या आप कुछ सहायता कर सकते हैं, इस मामले में?”

“हाँ, सुनें तो उस बंडल में आपका क्या था?”

“अजी, बदकिस्मत हूँ। सोचा था, बढ़िया पर्स में रुपये रखने से जेब कट जाएगी। एक मैले से कपड़े में बाँधकर धोती में ऊपर लपेट लिया था। पेशाब करने बैठा, तो कहीं खिसक गया। लुट गया मैं! हाय पूरे साल भर का इकट्ठा किया हुआ पैसा था, एक हजार...।”

उस व्यक्ति के नेत्रों में आँसू झलक आए।

जमुनाप्रसाद बोले—“ईश्वर पर भरोसा रखो। ईमानदारी की कमाई में बड़ी बरकत है। वह फजूल नहीं जाती। तुम्हारी कमाई व्यर्थ नहीं जा सकती।”

“सो तो ठीक है, पर मेरा धन तो हाथ से निकला ही समझिए।”

“कितने-कितने के नोट बँधे थे?”

“आप इतनी बारीकी से क्यों पूछ रहे हैं?”

“शायद आपकी कुछ सहायता कर सकूँ?”

“आप जैसे सहानुभूतिपूर्ण व्यक्ति बहुत कम हैं इस दुनिया में। धन और शक्ति का कोष समाप्त हो सकता है पर सेवा, परोपकार और सहानुभूति को दिन-रात कितना ही क्यों न बाँटा जाए, वह बूँद भर नहीं घटती।” उस व्यक्ति ने सारी धनराशि का सच-सच ब्योरा बता दिया। फिर नेत्र सजल हो उठे।

“लीजिए, आपका बंडल!” कहकर जमुनाप्रसाद ने संदूकची से रुपये निकालकर दे दिए। वह बड़े आश्चर्य में था कि कैसे उसे ये रुपये मिल रहे हैं।

वह व्यक्ति उनके पाँवों में गिर पड़ा—“आप नरदेह में देवता हैं।”

जमुनाप्रसाद बोले—“मैं नहीं भाई! गयाप्रसाद इस धन्यवाद के पात्र हैं। मैं तो उनकी धरोहर आप तक पहुँचा रहा हूँ।”

“आप दोनों ही देवता हैं।”

पूजा का अर्थ है—मन की ईमानदारी और पवित्रता! उस बुद्धि, प्रतिभा, शक्ति और सामर्थ्य का क्या मूल्य, जो अपने पिछड़े और दुखी अभावग्रस्त भाइयों को उठाने के काम नहीं आती। समाज को उठाने का कार्य उसके उठे हुए सदस्यों पर ही माना जाता है। अस्तु, जो उन्नत व्यक्ति अपने समाज को उठाने में योगदान नहीं करते, उनकी सारी योग्यताएँ पलाश-पुष्प की तरह केवल थोथा रंग ही रखती हैं।

अद्भुत उलझन—अभिनव निर्णय

दिल्ली विश्वविद्यालय का एक छात्र द्वितीय श्रेणी में एम० ए० की परीक्षा में पास हुआ और अपना प्रमाणपत्र लेने के लिए उसे दीक्षांत समारोह में आने का निमंत्रण मिला।

कितनी खुशी होती है आदमी को इम्तहान में पास होकर! और सो भी दूसरी डिवीजन में! सफलता का समाचार हृदय फुला देता है।

सोलह वर्षों की सफलता का मापदंड हैं, यह दो लकीरें! इनके बल पर आदमी सरकारी नौकरी पाता है, बड़ी-बड़ी फर्मों का प्रतिनिधि बनता है, व्यापार में हजारों रुपये कमाता है, समाज में पढ़ा-लिखा कहलाता है! भविष्य में सफल मनोरथ होता है! सब कुछ इसी पर टिका है!

कोई भी महत्वाकांक्षी युवक युनीवर्सिटी का यह निमंत्रण पाकर प्रसन्नता से फूल उठेगा !

महत्वाकांक्षा की पूर्ति ही तो व्यक्ति के चरम आनंद का कारण है। जिस महान उद्देश्य के लिए आदमी शुरू से श्रम करता है, उसमें सफल होकर उसे कितना अधिक सुख, उल्लास और प्रसन्नता होती होगी, एक भुक्तभोगी ही समझ सकता है ! वह सातवें आसमान पर रहता है।

लेकिन यह विद्यार्थी आज मन में बेचैन था। उसके मन में एक अजीब अंतर्द्वंद्व मचा हुआ था। वह अंतर्द्वंद्व जो मनुष्य के दैवी और आसुरी भावों में प्रायः होता रहता है। उसे एक ओर शरारत के लिए शैतान खींचता है, तो दूसरी ओर विवेक खतरे से बचाता है। एक मनुष्य में ही एकाएक दो विरोधी भावों की खींच-तान शुरू हो जाती है। अंतर्द्वंद्व उलझन की मनःस्थिति है।

वह विद्यार्थी न पूरी तरह खुश हो सका और न अपने मन में छिपे गुप्त भावों को रोक सका। न वह भोजन कर सका, न सो सका और न मन की शांति ही स्थिर कर सका ! वह गुमसुम सा था, जैसे साँप सूँघ गया हो।

आखिर कौन सा साँप उसे डस रहा था ? उसके मन में क्या उलझन थी ?

आज अपनी सफलता के दिन भी उसका रोम-रोम आत्मग्लानि में डूबा हुआ था। उसका विवेक उसे अंदर ही अंदर काट रहा था। उसकी अंतरात्मा उसे धिक्कार रही थी और विश्वविद्यालय का कन्वोकेशन अटेंड करने का यह निमंत्रण उसे रह-रहकर जहरीले बिच्छू की तरह डंक मार रहा था।

क्यों भला ?

हर्ष-विषाद का यह तांडव उसे क्यों परेशान कर रहा था ?

मिसरी के डेले में यह बाँस की फाँस कैसे आ गई थी ?

बात यह थी कि छह साल पूर्व उसने उसी नाम के दूसरे विद्यार्थी का मैट्रिक का जाली सर्टीफिकेट ले लिया और धोखे से कॉलेज में भरती हो गया था। उसने अपने आप कई बार मैट्रिक की परीक्षा दी थी, पर पास न हो सका था। उसे हिसाब से घृणा थी और इस विषय में वह फेल हो गया था। हिसाब के गड़ढे से निकला, तो आगे दुरुस्त हुई मोटर के धक्के की तरह चल पड़ा ! उसने आगे परिश्रम किया। नए विषयों में उसे दिलचस्पी पैदा हो गई। उन्हें पढ़ने लगा और फिर तो ऐसा खुला कि धड़ल्ले से आगे की परीक्षाएँ पास करता ही चला गया और सो भी हर सेकेंड डिवीजन में ! आज उसने एम० ए० भी सेकेंड डिवीजन में ही पास किया था। उसकी सब परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थीं।

लेकिन अंतरात्मा की कचोट उसे कुरेद रही थी आज—“हाय ! मैंने छह साल पूर्व मैट्रिक का जाली सर्टीफिकेट बनाया था। मैंने चोरी की थी। मेरा वह काम नैतिक दृष्टि से पाप था। मैं अपनी ही दृष्टि में हेय हूँ। चाहे आज कोई मेरे उस पाप को न जाने, पर सचाई यह है कि मैं अपराधी हूँ। मेरा वह कार्य बचकानापन ही था। मेरी सफलता पर उस पुराने पाप की छाया पड़ी है। अब चाहे मैं जितनी उन्नति करता जाऊँ, आगे कितना ही क्यों न पढ़ लूँ, चाहे कितना भी बड़ा अफसर क्यों न बन जाऊँ, अंदर से तो मैं पापी ही हूँ। यह मैंने कोई अच्छी बात नहीं की है। पाप, पाप ही है।”

उसके मित्र उसे मुबारक देकर कहते—“वाह भाई, खूब ! आप किसी भी परीक्षा में फेल नहीं हुए और आज द्वितीय श्रेणी में शान से पास हो गए। हार्दिक मुबारकबाद आपकी सफलता पर ! आपका भविष्य उज्ज्वल है।”

पर आज उसकी आँखों में यह सफलता नहीं, उसकी वह छह साल पुरानी चोरी ही नाच रही थी। आदमी जरा सा पाप कर दे, उसकी अंतरात्मा लगातार उसकी भर्त्सना करती ही रहती है। पाप एक ऐसा बोझ है जो छिपाने से बढ़ता है, प्रकट कर देने से और प्रायश्चित्त कर लेने से हलका हो जाता है। देर तक मन में रखने से पाप मनुष्य को जला डालता है। वह ऐसी अग्नि है जिसे मन से निकाल देना ही उचित है।

उसके सामने वह पुरानी चोरी ही नाच रही थी और उसकी यह शानदार समझी जाने वाली सफलता पाप का बोझ बन गई थी।

मन में शैतान और शिव की लड़ाई जारी थी।

शैतान की सलाह थी—“अरे, शान से ले एम० ए० का द्वितीय श्रेणी का सर्टीफिकेट और ठाठ से कर नौकरी! अब कौन पूछता है उन पुरानी बातों को! जो पुराना गया, वह मर गया। यह दुनिया भुलक्कड़ है। सबको अपनी-अपनी ही पड़ी है। कोई किसी को नहीं पूछता। आज तू नौकरी कर ले, तो पुरानी बातों का किसी को क्या पता! पुराने पाप को मत कुरेद! संसार में न जाने कितने ऐसे लोग पड़े हैं, जिनसे पाप हुए होंगे...पर कौन कहता फिरता है? चुप हो जा बस।”

पर दूसरी ओर जोरदार आवाज में उसके मन में विराजमान शिव कहते—“तू एम० ए० क्या, आई० सी० एस० कर ले, सामाजिक प्रतिष्ठा की चरम चोटी पर क्यों न पहुँच जाए, प्रधानमंत्री क्यों न बन जाए, तब भी नैतिक दृष्टि से छिपा हुआ चोर ही रहेगा। तेरा पाप तेरे माथे चढ़ा ही रहेगा! ईश्वर के दरबार में तुझे काला मुँह कर गधे पर चढ़ाया जाएगा। धिक! धिक! यह पाप करके तू क्या झूठी शान बघारता है? अंदर से पोल ही पोल है, बाहर से क्यों फुटबाल की तरह फूलकर कुप्पा हो रहा है? पाप से मुक्ति चाहता है तो सबके सामने

साहस से उसे स्पष्ट कर दे और जो सजा मिले, वह भुगत ले! सत्य ही चलता है, झूठ एक दिन हारता है।”

शैतान गरजा—“मियाँ, अब तुमसे एक बार गलती हो गई, तो खैर, उसे सबके सामने खोलकर दूसरी उससे बड़ी गलती मत करो। संत मत बनो। कलाई खुल गई तो जल्दबाजी पर जिंदगी भर पछताओगे, कानून से सजा पाओगे और जेल काटते-काटते जवानी गुजर जाएगी। बात को रफा-दफा कर सरकारी नौकरी करो और समाज में यश तथा प्रतिष्ठा पाओ! लुत्फ उठाओ! सैकड़ों ऐसा कर चुके हैं। एक तुम भी सही। कौन किसी को पूछता है? इस समाज में न जाने कितने पापी, अपराधी सजा पाने योग्य छिपे पड़े हैं। अपना काम करो। नैतिकता के चक्कर में क्या धरा है?”

लोभ आकर्षक था! उसे दुनिया में नाम हासिल करने की महत्वाकांक्षा थी।

भय डरावना था! जेलखाने में सजा का डर था।

पर आत्मा में जो सत्य का दीपक जल उठा था, वह शैतान की गरज, तड़क-भड़क और लोभ से न बुझा! न बुझा! उलटे जैसे-जैसे उसने बात को बारीकी से सोचा, वैसे-वैसे वह प्रखरतर होता गया।

आखिर उसने निर्णय किया कि वह पाप को प्रकट कर मन को हलका कर लेगा। चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो, वह उस पाप को दबाएगा नहीं। सजा कुछ भी क्यों न मिले, भुगतना मंजूर; लेकिन चोरी की भावना से मुक्त होना है। प्रायश्चित्त करना है। पाप की कुत्सित छाया उसके लिए असह्य हो उठी। सुबुद्धि की दिव्य दृष्टि फ्लैश लाइट की तरह चमकती रही।

फलस्वरूप उपकुलपति के पास जाकर उसने सच-सच बात कह दी। सजा की बाट देखने लगा।

यह घटना विश्वविद्यालय के इतिहास में अभूतपूर्व थी! ईमानदारी, साहस और कसूर को साफ-साफ कर सजा के लिए प्रतीक्षा...ऐसा उदाहरण दूसरा न था। चोर खुद अपनी चोरी प्रकट कर सजा माँग रहा था।

यह बात उपकुलपति से कुलपति के पास पहुँची। लड़के की ईमानदारी की बहुत प्रशंसा की गई। कितना साहस था! कितनी हिम्मत!! अपनी करनी पर कितना बड़ा पछतावा! कितना क्षोभ! पूरे कैरियर के बाद सबके सामने पाप प्रकट कर देने की अद्भुत घटना थी! फिर सजा पाने के लिए तैयार...अपनी तरह का पहला केस था।

कुलपति ने इस पर जो निर्णय किया, वह भी अद्भुत रहा। सुनिए उन्होंने निर्णय किया—

“इस विद्यार्थी को एम० ए० की डिग्री दे दी जाए और दूसरों के सामने ईमानदारी, स्पष्टवादिता, सजा के लिए तैयार रहने, पूरी सफलता पर लात मारने को प्रस्तुत रहने और पाप का प्रायश्चित्त करने के आदर्श को रखने के लिए इस घटना को प्रकाशित कर दिया जाए, पर उस विद्यार्थी का नाम गुप्त रखा जाए।”

विद्यार्थी का निर्णय आदर्श था और विद्यार्थियों के लिए। यदि अनजान में कोई पाप हो जाए, तो उसे देर-सवेर स्पष्ट कर पाप के बोझ से हलके हो जाओ। उस गठरी को छिपाकर भारी मत बनाओ। पाप को उजागर कर देने से ही मन की उथल-पुथल शांत हो सकती है, दबाने से नहीं। विद्यार्थी जिंदगी का आरंभ करने को होते हैं—शुरू में ही यदि ईमानदारी को अपनाएँ, तो कितना अच्छा हो!

दार्शनिक कुलपति का निर्णय शासकों के लिए आदर्श हो गया, जिसका अर्थ है—“जो सचमुच उठना चाहता है, उसे कानून की झूठी

बेड़ियों में कसकर मत सुलाओ, उसे उठने दो। कानून सत्य के लिए है, कानून के लिए सत्य नहीं!”

यह घटना ‘नया जीवन’ में दस साल पूर्व प्रकाशित हुई थी, किंतु आज भी अंधकार में प्रकाश की किरण की तरह नई है। पत्र के संपादक श्री कन्हैयालाल मिश्र ‘प्रभाकर’ की टिप्पणी दिशाबोधक है।

केवल अपने लिए ही नहीं

गया में कैदियों से शारीरिक श्रम कराया जाता है, लेकिन उनकी जीविका जितने पैसे काटकर शेष उन्हें मजदूरी के रूप में दे दिया जाता है। ये लोग इस थोड़ी सी मजदूरी को जमा करते जाते हैं। वर्ष के अंत तक पहुँचते-पहुँचते यह रकम काफी इकट्ठी हो जाती है। आजकल संरक्षण में रखकर कैदी बाहर खेतों या बिल्डिंगों में मजदूरी के लिए भी भेजे जाते हैं। कल्पना कीजिए, थोड़ी सी मजदूरी इन्हें मिलती होगी, वह इन सब के लिए क्या अर्थ रखती है! यह उनके लिए कितनी मूल्यवान हो सकती है! कैदियों में अपराधवृत्ति होती है और उसी की सजा इन्हें जेल में काम करके भुगतनी पड़ती है। वहीं इनमें अपनी पुरानी गलती के प्रति पछतावा और सत्प्रवृत्तियों का उदय होता है। मनुष्य में देर-सवेर सात्विक दैवी भावनाओं का उदय होता ही है। उसे शुभ प्रेरणा देने मात्र की आवश्यकता है। उनमें पवित्र सात्विक भावनाओं को जगाने की, गुणों को उत्साहित करने की जरूरत है।

स्वास्थ्य एवं कर मंत्री श्री अब्दुल कय्यूम अन्सारी गया जेल में कैदियों को वह वार्षिक मजदूरी बाँटने के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा—“आप लोगों ने आलस्य छोड़कर अपने को सुधारकर जो यह पैसे कमाए हैं, वे आप सबके लिए बड़े ही पवित्र हैं। श्रम करना भी परमात्मा की सेवा ही है, क्योंकि कड़ा परिश्रम करने वाले में गंदी प्रवृत्तियाँ उठ नहीं सकतीं। गया सेंट्रल जेल के कैदियों ने एक हजार

तिरेसठ रुपये कमाए हैं। यह रकम आप में बाँट दी जाएगी। क्या आपको इस संबंध में कुछ कहना है ?”

इतना सुनकर एक कैदी उठा।

वह बोला—“हम लोगों की पापवृत्तियाँ अब दब गई हैं और हम मनुष्य मात्र की सेवा को अपने जीवन का अंग बना रहे हैं। यह पैसा हमने अपने लिए नहीं, उन मुसीबत में फँसे हुए लोगों के लिए कमाया है, जो हर तरह निर्बल, दीन-हीन और दयनीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हम गिरे हुए समाज को उठाने में अपने धर्म की कमाई लगाकर धर्म को व्यावहारिक रूप देना चाहते हैं।”

“तो आप सबने क्या तय किया है ?” मंत्री जी ने पूछा।

“इस राशि को किसी परोपकार के काम में लगाया जाए।”

एक कैदी ने सुझाव दिया—“किसी आध्यात्मिक संस्था को दान दे दिया जाए, जो जनता की सेवा के द्वारा भगवान की सेवा करती हो।”

मंत्री जी ने सुझाव दिया—“यह रकम जवाहरलाल नेहरू स्मारक कोष को दानस्वरूप दी जा सकती है। वहाँ इसका सदुपयोग होगा।”

“मंजूर है। यह दान सबसे अच्छा रहेगा!” सबने एक स्वर से कहा। वह एक हजार तिरेसठ रुपये दान दे दिए गए।

किसी के लिए अच्छा पिता, अच्छा पति अथवा एक सफल गृहस्थ ही हो सकना पर्याप्त नहीं है। यह तो मनुष्य में होना ही चाहिए। इनमें कोई विशेषता नहीं है। केवल अपने लिए और अपने व्यक्तिगत परिवार के लिए ही जीवित रहना और उसके लिए ही सुख-सुविधाएँ जुटाते रहने को न तो उदारता और न पुरुषार्थ कहा जाएगा। जब मनुष्य इस परिधि से आगे बढ़ता है, सही अर्थों में तभी वह कुछ करता है। कैदियों का वह दान परोपकार के लिए एक अच्छा उदाहरण है।



हमारा सत्संकल्प

- ❖ हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।
- ❖ शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।
- ❖ मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।
- ❖ इंद्रियसंयम, अर्थसंयम, समयसंयम और विचारसंयम का सतत अभ्यास करेंगे।
- ❖ अपने आप को समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।
- ❖ मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।
- ❖ समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।
- ❖ चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी एवं सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।
- ❖ अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।
- ❖ मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी उसकी सफलताओं, योग्यताओं एवं विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।

- ❖ दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।
- ❖ नर-नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।
- ❖ संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य-प्रसार के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।
- ❖ परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।
- ❖ सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।
- ❖ राष्ट्रीय एकता एवं समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।
- ❖ मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है—इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे, तो युग अवश्य बदलेगा।
- ❖ 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा', 'हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा' इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।



मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ० प्र०)